निरुक्त नाम

1\. आचार्य :

(क) आचार्य: आचारं ग्राहयति - आचार्य इसलिए कहते हैं, क्योंकि वह आचार को ग्रहण करता है, विद्यार्थी को आचार सिखाता है।

(ख) आचिनोत्यर्थान - पदार्थों का संचय करता विद्यार्थी को सूक्ष्म-से-सूक्ष्म पदार्थों का दर्शन करा देता है।

(ग) आचिनोति बुद्धिमिति वा - चूँकि आचार्य शिष्य की बुद्धि का संचय करता है, उसकी बुद्धि बढ़ाता है, अतः उसे आचार्य कहते हैं।

2\. गौ :

(क) "गौ: इति पृथिव्या: नामधेयम्" — गौ पृथिवी का पर्याय है।

(ख) यत् दूरं गता भवति। यत्-च अस्यां भूतानि गच्छन्ति। गाते: वा। ओकारो नामकरण: — यह दूर तक गई हुई है अथवा इसमें सभी प्राणि गति करते हैं अत: इसे गौ कहते हैं। इन दोनों विग्रहों में 'गम्' धातु से 'डो' प्रत्यय करके गो सिद्ध होता है, अथवा 'गाङ्' गतौ से 'ओकार' प्रत्यय करके 'गो' बनता है।

3\. वृत्र :

वृत्रो वृणोते: वा। वर्तते वा, वर्धते वा।

'वृत्र' शब्द आच्छादनार्थक √'वृञ्' धातु से बनता है, क्योंकि वृत्र-मेघ आकाश को आच्छादित कर लेता है। अथवा वर्तमानार्थक √'वृत्' धातु से बनता है, क्योंकि वह वर्तमान रहता है, अथवा वृद्ध्यर्थक √वृध् धातु से बनता है, क्योंकि बरसात में वृत्र-मेघ खूब बढ़ता है।

4\. आदित्य :

आदत्ते रसान्, आदत्ते भासं ज्योतिषाम्, आदीप्तो भासेति वा, अदिते: पुत्र इति वा।

2.

यह रसों को लाता है- आ √हृ, अथवा ज्योतिपुंजों का प्रका लाता है, अथवा प्रकाश से आदीप्त है, अथवा अदिति का पुत्र है, अत: आदित्य कहलाता है।

5. उषा:

उषस् उच्छतीति

'उषा' शब्द विवासार्थक √उच्छ् धातु से बना है, क्योंकि यह अंधेरे को विवासित करती है / निकालती है। उषा रात्रि का पिछला पहर है - रात्रे: अपर: काल: ।

6. अग्नि:

अग्रणी: भवति, अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते, अङ्गं नयति सन्नमान:।
अक्नोपन: भवति - इति स्थौलाष्ठीवि: ।

अग्नि 'अगुआ' होता है, अथवा यज्ञों में सर्वप्रथम ले जाया जाता है, अथवा कोई भी वस्तु (तृण, काष्ठादि) दी जाने पर उसे अपना अंग बना लेता है अत: अग्नि कहलाता है। स्थौलाष्ठीवि आचार्य के मतानुसार अग्नि 'अक्नोपन' होता है। अक्नोपन का अर्थ है - अस्नेहन, विरूक्षीकरण। अग्नि सब रसों को सुखा देता है, भिगाता नहीं है, स्निग्ध नहीं करता है। अत: अग्नि कहलाता है।

7. जातवेदस्

'जातानि वेद। जातानि वा एनं विदु:। जाते जाते विद्यते इति वा।
जातवित्तो वा = जातधान:।

जातवेदा: अग्नि का नाम है। क्योंकि वह सभी उत्पन्न वस्तुओं को जानता है, अथवा उत्पन्न वस्तुएँ उसे जानती हैं, या वह प्रत्येक उत्पन्न वस्तु में विद्यमान है, अथवा उत्पन्न वस्तुएँ ही उसके लिए वित्त = धन हैं, अथवा उत्पन्न वस्तुएँ उसके लिए विद्या है। ज्ञान

8. वैश्वानर:

विश्वान् नरान् नयति। विश्वे एनं नरा: नयन्ति इति वा।
अपि वा विश्वानर एव स्यात्

यह रसों को लाता है- आ √दा, अथवा ज्योतिपुंजों का लाता है, अथवा प्रकाश से आदीप्त है, अथवा अदिति का पुत्र है, अत: आदित्य कहलाता है।

5. उषा:

उषस् उच्छतीति

'उषा' शब्द विवासार्थक √उच्छ् धातु से बना है, क्योंकि यह अंधेरे को विवासित करती है/निकालती है। उषा रात्रि का पिछला पहर है- रात्रे: अपर: काल:।

6. अग्नि:

अग्रणी: भवति, अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते, अङ्गं नयति सन्नमान:। अक्नोपन: भवति - इति स्थौलाष्ठीवि:।

अग्नि 'अगुआ' होता है, अथवा यज्ञों में सर्वप्रथम ले जाया जाता है, अथवा कोई भी वस्तु (तृण, काष्ठादि) दी जाने पर उसे अपना अंग बना लेता है अत: अग्नि कहलाता है। स्थौलाष्ठीवि आचार्य के मतानुसार अग्नि 'अक्नोपन' होता है। अक्नोपन का अर्थ है - अस्नेहन, विरूक्षीकरण। अग्नि सब रसों को सुखा देता है, भिगाता नहीं है, स्निग्ध नहीं करता है। अत: अग्नि कहलाता है।

7. जातवेदस्

'जातानि वेद। जातानि वा एनं विदु:। जाते जाते विद्यते इति वा। जातवित्तो वा = जातधान:।

जातवेदा: अग्नि का नाम है। क्योंकि वह सभी उत्पन्न वस्तुओं को जानता है, या वह प्रत्येक जानता है, अथवा उत्पन्न वस्तुएँ उसे जानती हैं, अथवा उत्पन्न वस्तुएँ ही उसके लिए उत्पन्न वस्तु में विद्यमान हैं, अथवा उत्पन्न वस्तुएँ उसके लिए विद्या है। ज्ञान

वित्त = धन है, अथवा उत्पन्न वस्तुएँ

8. वैश्वानर:

विश्वान् नरान् नयति। विश्वे एनं नरा: नयन्ति इति वा। अपि वा विश्वानर एव स्यात्

यह सभी मनुष्यों को ले जाता है, अथवा इसे ही सभी मनुष्य ले जाते हैं, अथवा 'विश्वान् + अर:' = सबको प्राप्त करता है, अत: वैश्वानर कहाता है।

9. दक्षिणा

(क) दक्षिणा दक्षते: समर्धयति कर्मण:। व्यृद्धं समर्धयतीति -> समृद्ध करने वाली या बनाने वाली √दक्ष् से दक्षिणा शब्द निष्पन्न होता है। √दक्ष से दक्षिणा को निष्पन्न मानने का कारण यह है कि यह निर्धन को भी समृद्ध बना देती है।

(ख) अपि वा प्रदक्षिणागमनात् । दिशमभिप्रेत्य -> दक्षिणा दिशा से सम्बन्ध होने के कारण यज्ञीय पारिश्रमिक को 'दक्षिणा' कहा जाने लगा। दक्षिणा में दी जाने वाली गायें, वस्त्र, अश्वादि बायें ओर से दक्षिण दिशा में लाकर ऋत्विजों को दान में दी जाती थीं। इस पक्ष में दक्षिण दिशा के साथ सम्बन्ध होने के कारण इसे 'दक्षिणा' कहा गया।

10. वर:

'वरो वरयितव्यो भवति' -> वरणीय अर्थात् स्वीकरणीय होने के कारण वर को वर कहा जाता है। किसी वस्तु की श्रेष्ठता का आधार उसकी स्वीकार्यता ही होती है। यहाँ √वृञ् वरणे' से 'वर' शब्द निष्पन्न होता है।

11. हस्त

'हस्तो हन्ते: प्राशुर्हनने' -> अन्य किसी अङ्ग की अपेक्षा हाथ मारने के लिए सबसे शीघ्र उठ जाता है, इसलिए मारने अर्थ वाली √हन से हस्त शब्द व्युत्पन्न होता है।

12. सुवीर

(क) 'वीरवन्त: कल्याणवीरा वा' -> जो वीरों से युक्त या कल्याण करने वाले वीरों से युक्त हैं, वे 'सुवीरा:' हैं। यहाँ 'सु + वीरा:' से 'सुवीरा:' पद निष्पन्न होता है।

13. वीर

(i) वीरो वीरयत्यमित्रान् (ii) वेतेर्वा स्याद्गतिकर्मणः (iii) वीरयतेर्वा →

(i) जो शत्रुओं को दूर खदेड़ देता है, या जिसकी वीरता से शत्रु काँपने लगते हैं, वह वीर है। इस पक्ष में 'वि + ईर्' से 'वीर' शब्द निष्पन्न होता है।

(ii) गत्यर्थक √वी से वीर शब्द निष्पन्न होता है। इस पक्ष में अर्थ है — 'समस्याओं के आने पर भी जो निरन्तर 'चरैवेति' के अनुरूप आगे बढ़ता रहे, वह वीर है।'

(iii) चुरादिगणीय √वीर-विक्रान्तौ से 'वीर' शब्द निष्पन्न होता है। तदनुसार अर्थ है — 'जिसके कदम बाधाओं से न डगमगायें और जो निरन्तर साहस के साथ आगे बढ़ता रहे, वह वीर है।

14. होता

ऋत्विक्कर्मणां विनियोगमाचष्टे। ऋचामेकः पोषमास्ते पुपुष्वान्

होता। ऋगर्चनी।

15. उद्गाता

गायत्रमेको गायति शक्वरीषु उद्गाता। गायत्रं गायतेः स्तुतिकर्मणः।

→ उद्गाता वह ऋत्विज है, जो शक्वरी ऋचाओं में गायत्र साम का प्रयोग करता है। इसप्रकार सामगान में कुशल ऋत्विज् 'उद्गाता' है।

16. ब्रह्मा

ब्रह्मैको जाते जाते विद्यां वदति। ब्रह्मा सर्वविद्यः, सर्वं वेदितुमर्हति ब्रह्मा परिवृढः, श्रुततः ब्रह्म परिवृढं सर्वतः।

→ जो समय-2 पर मन्त्रगत विद्या का उद्घाटन करता है, वह विद्वान ऋत्विज् 'ब्रह्मा' है। जो श्रुतज्ञान की दृष्टि से सबसे आगे है, वह ब्रह्मा है।

17. अध्वर्यु

यज्ञस्य मात्रां निमिमीत उ एकः, अध्वर्युः। अध्वर्युरध्वरयुः। अध्वरं युनक्ति। अध्वरस्य नेता। अध्वरं कामयत इति वा।

→ अध्वर्यु नामक ऋत्विज् यज्ञ की मात्रा का निर्धारण/नियमन करता है। 'अध्वर्युः' शब्द वस्तुतः 'अध्वरयुः' है, क्योंकि यह यज्ञ का संयोजन करता है, अथवा यज्ञ का नेतृत्व करता है अथवा यज्ञ की कामना करता है।

18. अक्षि

'अक्षि चष्टेः' → चूँकि आँखे सब कुछ व्यक्त कर देती है, इसलिए अक्षि शब्द व्यक्त अर्थ वाली √चक्ष् से बनता है। 'चक्षि' में चकार के अकार का लोप होकर 'अक्षि' शेष बचता है।

19. कर्ण

(क) कर्णः कृन्ततेः। निकृत्तद्वारो भवति → चूँकि कान का द्वार कटा हुआ होता है, इसलिए कर्ण शब्द छेदन अर्थ वाली √कृन्त् से निष्पन्न है।

(ख) ऋच्छतेरित्याग्रायणः → आचार्य आग्रायण 'कर्ण' शब्द को गत्यर्थक √ऋच्छ् से व्युत्पन्न मानते हैं।

20. आस्य

(क) आस्यमस्यतेः → आस्य शब्द प्रक्षेपण अर्थ वाली √अस् से निष्पन्न होता है, क्योंकि शब्द हो या फिर अन्न, या जल, सबको यह मुख बाहर या अन्दर की ओर फेंकता है, इसलिए इसे आस्य कहते हैं।

(ख) आस्यन्दत एनदन्नमिति वा → मुख में आकर अन्न गीला होता है, या फिर अन्न को पाकर मुख गीला होता है, इसलिए गीले अर्थ वाली '√स्यन्दू- प्रस्रवणे' से 'आस्य' शब्द उत्पन्न होता है।

21. अर्थ

(क) अर्थो अर्तेः -> अर्यते गम्यते अर्थः = जिसे शब्द के द्वारा जाना जाए या प्राप्त किया जाए, वह अर्थ है, तदनुसार गत्यर्थक √ऋ से 'अर्थ' शब्द निष्पन्न होता है।

(ख) 'अरणस्थो वा' इस पद में गत्यर्थक √ऋ से 'अरण' शब्द तत्पश्चात् 'अरण + स्था' से 'अरणस्थ' उससे 'अर्थ' शब्द उत्पन्न होता है। तदनुसार अर्थ होगा -> 'अरणे गमने तिष्ठतीति अर्थः' अर्थात् शब्द के चले जाने / अनुपस्थित रहने पर भी जो बना बना रहता है, वह अर्थ है।

22. कम्बोज

(क) कम्बोजाः कम्बलभोजाः -> कम्बल का भोग करने या कम्बल के व्यापार से भोग प्राप्त करने वाले कम्बोज कहलाए। 'कम्बल + भोज' - कम्बल का 'कम्' तथा 'भोज' के 'भ' को 'ब' होकर 'कम् + बोज = कम्बोज' रूप सिद्ध होता है।

(ख) 'कमनीयभोजा वा' -> कमनीय भोगों का भोग करने वाले होने के कारण ये कम्बोज कहलाए। (सिद्धि -> पूर्ववत्)

23. कम्बल

कम्बलः कमनीयो भवति -> कम्बल कमनीय अर्थात् प्रार्थनीय होता है।

24. राजा

राजा राजतेः -> दीप्त्यर्थक √राज् से राजा पद निष्पन्न होता है।

25. पुरुषः

(क) पुरुषः पुरिषादः -> 'पूः' अर्थात् शरीर / बुद्धि में

विषयोपलब्धि के लिए रहने के कारण जीवात्मा 'पुरिषाद्ः' कहाता है और इसी से 'पुरुषः' रूप उपपन्न हुआ है।
→ पुरि शरीरे सीदति विशतीति पुरुषः।
(ख) पुरिशयः → यह शरीर और बुद्धि में विशेष रूप से आवास करता है इसलिए यह जीवात्मा 'पुरुष' कहाता है।
→ पुरि शरीरे शेते → पुरिशयः।
(ग) पूरयतेर्वा → यह पुरुष सर्वत्र व्याप्त है, इसलिए पुरुष कहाता है।

26. समुद्रः

(क) समुद्रवन्त्यस्मादापः → इस अन्तरिक्ष (समुद्र का पर्यायवाची) से जल सम्यक् रीति से नीचे अथवा पृथिवीस्थ से जलभाप बनकर ऊपर की ओर जाते हैं, अतः यह समुद्रः कहलाता है।
'सम् + उत् + √द्रु'

(ख) समभिद्रवन्त्येनमापः → अन्तरिक्ष की ओर चारों तरफ से जल दौड़ते हुए जाते हैं, अथवा पृथिवीस्थ समुद्र की ओर सब ओर उदक भागते हुए चले आते हैं, अतः उन्हें 'समुद्र' कहा जाता है। 'सम् + अभि + √द्रु'
(ग) समुदको भवति → अन्तरिक्ष और पृथिवीस्थ समुद्र में उदक संहक अर्थात् एकत्रित होते हैं, अतः यह 'समुद्र' कहाता है।

27. रात्रि

(क) प्ररमयति भूतानि नक्तञ्चारीणि। उपरमयतीतराणि ध्रुवीकरोति
→ रात्रि को रात्रि कहे जाने का आधार यह है कि यह निशाचरों को आनन्द देती है, उन्हें क्रीडा का अवसर देती है, तथा दिवाचरों को विचरण करने से रोकती है।
क्रिडार्थक √रम् से रात्रि पद निष्पन्न होता है।

(ख) रातेर्वा स्याद् दानकर्मणः। प्रदीयन्तेऽस्यामवश्यायाः →
दानार्थक 'रा' से रात्रि पद उत्पन्न होता है, क्योंकि रात्रि
ओसकण गिरते हैं। यहाँ ओसकणों के दान के कारण रात्रि
शब्द को 'रा' से उत्पन्न माना गया है।

29. अन्तरिक्ष

(क) अन्तरा क्षान्तं भवति → द्यावापृथिवी के मध्य स्थित होने
यह अन्तरिक्ष कहाता है।

(ख) अन्तरेमे इति वा → द्यावापृथिवी इसके मध्य स्थित है, अतः
यह अन्तरिक्ष कहाता है।

(ग) शरीरेष्वन्तरक्षयमिति वा → सभी शरीरों में यह बिना क्षय हुए
विद्यमान रहता है, अतः अविनाशी होने के कारण यह
अन्तरिक्ष कहाता है।

30. हिरण्यम्

(क) ह्रियते आयम्यमानमिति वा → सुवर्ण शिल्पियों के द्वारा
कटकादि के रूप में विस्तृत किया जाता है, अतः हिरण्य कहाता
है। [√हृ + √यम् → हिरम्य → हिरण्य]

(ख) ह्रियते ~~जनाजना~~ जनाज्जनमिति वा → एक मनुष्य से दूसरे
मनुष्य के पास जाता है। (हृ + जन → हिरजन → हिरण्य)

(ग) हितरमणं भवतीति वा → लोगों के विपत्ति में हितकारी होता है
(हित + रमणीय → हिरम्य → हिरण्य)

(घ) हृदयरमणं भवतीति वा → इसमें सबका मन रमता है।
(हृदय + रमण → हिरम्य → हिरण्य)

31. पुत्र

(क) पुत्रः पुरू त्रायते – पूरी तरह से पिता की रक्षा करता है।

(ख) निपरणाद्वा – निपरण अर्थात् पिण्ड, पितृयज्ञ, श्राद्ध आदि द्वारा शास्त्र की सहायता से पितरों की रक्षा करता है।

(ग) पुन्नरकं ततस्त्रायत इति वा – जो 'पुत्' नामक नरक से पितरो की रक्षा करता है

32. आदित्य

(क) आदित्यः कस्मात्? आदत्ते रसान् → यह रसों का शोषण करता है। (आ + √दा)

(ख) आदत्ते भासं ज्योतिषाम् → यह चन्द्रमा, तारामण्डल की कान्ति का हरण कर लेता है।

(ग) आदीप्तो भासेति वा → यह चमकता हुआ होता है, इसलिए आदित्य कहाता है। (आ + √दीप्)

(घ) अदितेः पुत्र इति वा → अदिति का पुत्र होने से आदित्य है।

33. मेघ

मेघः कस्मात्? मेहतीति सतः → यह सिञ्चन करता है, इसलिए मेघ कहाता है।

34. वाक्

वाक् कस्मात्? वचेः → वाणी से कहे जाने के कारण वाक् कहाता है। (√वच्)

35. उदक

उदकं कस्मात्? उनत्तीति सतः → क्योंकि यह भिगो (गिलाकर) देता है, इसलिए उदक कहाता है।

36. नदी

नदना इमा भवन्ति शब्दवत्यः -> शब्दवती होने के कारण नदियों को 'नद्यः' कहा जाता है।

37. अश्व :

(क) अश्नुतेऽध्वानम् -> मार्ग को शीघ्रता से व्याप्त करने के कारण अश्व कहलाता है। (√अश्- व्याप्ति अर्थ)

38. (ख) महाशनो भवतीति वा -> बहुत अधिक भक्षण करने के कारण अश्व कहाता है। (√अश- भोजने)

38. मन्त्र - 'मन्त्रा मननात्' - मननात्मक होने के कारण (√मन् + त्र)

39. छन्दस् - 'छन्दांसि छादनात्' - मन्त्र के आच्छादक होने के कारण

40. स्तोम - 'स्तोमः स्तवनात्' - स्तवन करने के कारण (√स्तु)

41. यजुष् - यजुर्यजतेः

42. सामन् - साम सम्मितमृचा -> मापा हुआ होने से ऋचाओं को साम कहते हैं।

- स्यतेर्वा -> ऋग्वेद की ऋचाओं के उपर साम स्वरों का आरोप किया जाता है

- ऋचां समं मेने इति नैदाना: -> ऋचाओं के समान मानने के कारण साम कहा गया।

43. गायत्री -

(क) गायत्री गायतेः स्तुतिकर्मणः -> देवताओं की स्तुति की जाती है।

(ख) गायत्री त्रिगमना विपरीता -> तीन चरणों में गमन करने के कारण

(ग) गायतो मुखादुदपतद् इति च ब्राह्मणम् -> गाते हुए प्रजापति के मुख से प्रकट होने के कारण।

44. उष्णिक्

(क) उष्णिगुत्स्नाता भवति

(ख) स्निह्यतेर्वा कान्तिकर्मणः

(ग) उष्णीषिणो वेत्यौपमिकम्

(घ) उष्णीषं स्नायते :

45. अनुष्टुप्

(क) अनुष्टुबनुष्टोभनात्

(ख) गायत्रीमेव त्रिपदां सतीं चतुर्थेन पादेनानुष्टोभति इति च ब्राह्मणम्

46. बृहती - पंक्ति

(क) बृहति परिबर्हणात्

(ख) पंक्ति पञ्चपदा

47. त्रिष्टुप्

त्रिष्टुप् स्तोभत्युत्तरपदा, का त्रिता स्यात ? तीर्णतमं छन्दः । त्रिवृद् वज्रः । तस्य स्तोभनीति वा । यत्त्रिरस्तोभत् तत् त्रिष्टुभस्त्रिष्टुप्त्वमिति विज्ञायते ॥

48. जगती

जगती गततमं छन्दः । जलचरगतिर्वा । जलगल्यमानोऽसृजदिति च ब्राह्मणम् ।